वैदिक संहिताओं में रुद्र का स्वरूप

हिन्दूधर्म की समस्त शाखाओं तथा संप्रदायों के मूलभूत विचारों के बीज वैदिक संहिताओं में पाये जाते हैं। ये मूलभूत विचार चाहे उनके दार्शनिक पक्ष से जुड़े हों चाहे धार्मिक कर्मकाण्डों से चाहे पौराणिक कथाओं से, इनके सूत्र वैदिक संहिताओं में खोजे जा सकते हैं। यही कारण है कि संहिताओं में विस्तार से सभी बातें न बताकर मात्र उनका संकेत भर दिया गया है। क्योंकि विस्तार से बताने पर ऋषियों का काफी समय एवं श्रम लगता तथा उन सबको स्मरण रखना भी संभव नहीं था। पहले ऋषि लोग संहिताओं को कण्ठस्थ रखते थे फलस्वरूप ये गुरु-शिष्य परम्परा से अक्षुण्ण रूप से आधुनिक कालतक चली आयी हैं। गुरु से सुनकर याद रखने के कारण ही इसे श्रुति भी कहते हैं। वैदिक संहिताओं में निहित धार्मिक सूत्रों का विकास क्रमशः ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, इतिहास(रामायण एवं महाभारत आदि) एवं पुराण आदि ग्रन्थों में हुआ है। इस अध्याय में हम कुछ प्रमुख शैवमान्यताओं के बीज वैदिक संहिताओं में खोजने का प्रयत्न करेंगे।

भगवान् शिव का व्यक्तित्व इतना अधिक वैविध्यपूर्ण तथा विचित्र है जितना अन्य किसी देवता का नहीं है। एक ओर तो वे भयंकर तथा विनाशक हैं, प्रलयकाल में जिनके तृतीय नेत्र से उद्भूत कालाग्नि जगत् की प्रत्येक वस्तु को भस्मसात कर देती है और जो दिग्गजों को अपने शूल की नोक से छेदते हुए अपने प्रचण्ड ताण्डव से ब्रह्माण्ड को हिला देते हैं और साथ ही दूसरी ओर वे कल्याणमय(शिव), मंगल प्रदान करनेवाले(शंकर) तथा आशुतोष भी हैं जो भक्तों की जरा सी तपस्या से तुष्ट होकर उन्हें मनचाही सिद्धि प्रदान करते हैं। एक ओर जहाँ वे श्मशान में नग्न विचरण करनेवाले भूतों तथा प्रेतों के साथी हैं तो दूसरी ओर श्वेताश्वतर-उपनिषद् आदि श्रुतियों तथा कश्मीर शैव-सिद्धान्त में उनकी माया के अधीश्वर, जगत् के कारण-स्वरूप, अव्यक्त, परमतत्त्व के रूप में भी प्रतिष्ठा है। शिव के इन सब रूपों का सामंजस्य करना, सबमें सम्बंध के स्पष्ट या अस्पष्ट सूत्र का वैदिक संहिताओं में अन्वेषण करना अत्यन्त दुष्कर है।

परम्परा से वेदों की संख्या चार स्वीकार की गयी है- ऋग्वेद[1], यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। पुनः प्रत्येक वेद के चार भाग माने जाते हैं-संहिता या मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। प्रत्येक वेद के अनेकों ब्राह्मण, उपनिषद् एवं आरण्यक ग्रन्थ आजकल लुप्त हो गये हैं। वेदों की संहिताओं के भी कई अंश लुप्त माने जाते हैं। वेदों के मंत्रों के अर्थसंबंधी चार सम्प्रदायों का भी उल्लेख अतिप्राचीन है- 1. अधिदैविक 2. आध्यात्मिक 3. आधिभौतिक एवं 4. अधियज्ञीय। इनके अलावा अर्थ-निर्धारणसंबंधी अन्य सम्प्रदाय भी हैं जैसे-रहस्यवादी, विज्ञानवादी तथा राष्ट्रवादी। यहाँपर इतना

1. ऋगवेद को सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन वेद माना जाता है और यह वेद सभी से बड़ा है। सामवेद में, जो सबसे छोटा वेद है, मुख्यतः ऋग्वेद एवं यजुर्वेद की ही गेय संहिताओं का संकलन किया गया है। इसमें लगभग 100 मौलिक मंत्र हैं। बाकी सभी अन्य वेदों से लिये गये हैं।

ही कहना पर्याप्त है कि कोई भी वेदार्थ की दृष्टि सम्पूर्ण नहीं है। अलग-अलग प्रसंगों में अलग-अलग दृष्टियों से अर्थ करना ज्यादा उपयुक्त होता है, उपरोक्त सभी दृष्टियाँ स्थल-विशेष पर ठीक हो सकती हैं पर कोई भी दृष्टि सम्पूर्ण स्थलों पर उपयुक्त नहीं है। प्रस्तुत लेख में किसी एक दृष्टि को लेकर शिव-स्वरूप की विवेचना नहीं की जायगी।

रुद्र का स्वरूप

ऋग्वेद में रुद्र को गौर वर्ण के तेजस्वी युवक के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने धनुष एवं बाणों को लेकर विचरण करते हैं तथा क्रुद्ध होनेपर मनुष्यों तथा पशुओं का विनाश कर डालते हैं। इनका रूप अत्यन्त तेजयुक्त है (**"त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे"**, ऋ. वे. 1/114/5) और आभावान् सूर्य या सोने की तरह चमकता है (**"यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते"**, ऋग्वेद 1/43/5)। इनके स्वर्ण के आभूषणों आदि की भी चर्चा (ऋ. वे. 2/33/9 तथा 2/33/10 में) की गयी है। इनके शरीर का रंग भूरा माना गया है (ऋ. वे. 2/33/5, 9)। इनको युवक कहा गया है (ऋ. वे. 2/33/11 तथा 5/60/5)। इनके अंग पुष्ट एवं दृढ़ हैं (ऋ. वे. 2/33/9)। अंगों में इनके हाथ एवं बाहु का विशेष उल्लेख किया गया है। इनका हाथ मंगलमय तथा शीतलता पहुँचानेवाला है (ऋ. वे. 2/33/7)।

रुद्र का वाहन रथ एवं शस्त्र धनुष है (**"तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा ....."**, ऋ. वे. 5/42/11 तथा **"अहं रुद्राय धनुरा तनोमि"** ऋ. वे. 10/125/6)। वाजसनेयी संहिता (3/61)[1] में रुद्र के धनुष का नाम पिनाक बताया गया है (**"अवततधन्वा पिनाकावसः"**)। रुद्र के धनुष के अलावा अन्य अस्त्रों वज्र (ऋ. वे. 2/33/3) एवं विद्युत (ऋ. वे. 7/46/3) का भी उल्लेख है।

रुद्र के स्वरूप की जो विशेषता उन्हें अन्य देवताओं से अलग करती है वह उनका भयानक, उग्र तथा संहारकरूप है। उनके लिये भीम, उग्र, तथा उपहत्नु (घातक) विशेषण प्रयुक्त हुए हैं (ऋ. 2/33/11)। अथर्ववेद (11/2/7) में उनको अर्धकघाती (पौराणिक अन्धकासुर) कहा गया है (**रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि**)। रुद्र के प्रति कहे गये ऋ. वे. के मन्त्रों में स्तुतिकर्त्ता का भय झलकता है (ऋ. वे. 1/114/7 तथा 8)। ऋ. वे. (2/33/14) में रुद्र के शूल से बचने की प्रार्थना की गयी है। अथर्ववेद (11/2/22 तथा 26) में ज्वर, विष, खांसी एवं दिव्य अग्नि या तड़ित ये चार रुद्र के प्रमुख अस्त्र बताये गये हैं। रुद्र से इन सबको अपने से दूर रखने की प्रार्थना की गयी है।

किन्तु इनके साथ ही ऋ. वे. में रुद्र के स्वरूप का दूसरा पक्ष भी है जिसमें उन्हें कृपालु, कल्याणमय तथा श्रेष्ठ वैद्य कहा गया है जो अपनी विविध औषधियों के द्वारा मनुष्य के सभी रोगों को दूर करते हैं। उनका हाथ मृलयाकु (मंगलमय) है (ऋ. वे. 2/33/7), तथा वे उदारदाता (मीढ्वान्) हैं (ऋ. वे. 1/114/3 तथा 2/33/14)। वाजसनेयी संहिता (16/51) तथा अथर्ववेद में मीढुष्टम (अत्यन्त

1. वाजसनेयी संहिता को (शुक्ल) यजुर्वेद भी कहा जाता है।

उदार) शब्द केवल रुद्र के लिये प्रयुक्त हुआ है। वे अत्यन्त मंगलमय(शिव) हैं तथा स्तोता को प्रचुर धन-धान्यादि से पूर्ण कर देते हैं। रुद्र अन्य देवों के क्रोध तथा उनसे होनेवाले संकटों को भी दूर करते हैं(**"आरे अस्मद् दैव्यं हेलो अस्यतु"**, ऋ. वे. 1/114/4)। 'शम्'(कल्याण) तथा मयस्(सुख) के वे कर्त्ता हैं(ऋ. वे. 1/43/6) इसीलिये उनको वाजसनेयी संहिता(16/41 आदि) में 'शंकर' एवं 'मयस्कर' कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण(2/2/5/5) का कथन है कि जो 'शिव' है वही 'मय' भी है **(यद्वै शिवं तन्मयः)**। संसार की सभी औषधियों पर उनका अधिकार है(ऋ. वे. 5/42/11)। उनके पास सहस्त्रों औषधियाँ हैं(ऋ. वे. 7/46/3), अपने स्तोताओं के लिये वे इन्हें हाथ में लिये रहते हैं(ऋ. वे. 1/114/5) और इन औषधियों का उपयोग करके मनुष्य 100 वर्षों तक जीवित रह सकता है(ऋ. वे. 2/33/2)। यही कारण है कि उन्हें वैद्यनाथ की उपाधि दी गयी है(ऋ. वे. 2/33/4)।

(1) रुद्र शब्द का अर्थ

वैदिक रुद्र का आधिभौतिक स्वरूप क्या था? इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। परन्तु इसी के स्वरूप पर रुद् शब्द का अर्थ निर्भर करता है।

एक स्थान पर शतपथ ब्राह्मण रुद् धातु को णिजार्थक मानते हुए रुद्र का अर्थ 'रुलानेवाला' करता है। शतपथ ब्रा.(11/6/3/7)में कहा गया है कि दस प्राण और आत्मा इनको मिलाकर रुद्र कहते हैं क्योंकि शरीर से निकलते समय वे सम्बन्धियों को रुलाते हैं।

स्वामी दयानन्द जैसे कुछ आधुनिक विद्वान् भी रुद्र का अर्थ 'रुलानेवाला' लेने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार पापियों एवं दुष्टों को रुलाने के कारण परमात्मा का ही नाम रुद्र है।

महाभारत(शान्तिपर्व 284/77) में दक्ष शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि 'रु' संकट को कहते हैं और उनको 'दूर करने'(द्रावण = भगाना) के कारण आपका नाम रुद्र है। इसी प्रकार ऋ. वे.(1/114/1 तथा 2/1/6) की व्याख्या में सायण ने भी रुद् का अर्थ 'कष्ट', 'दुःख' लेकर रुद्र का अर्थ 'कष्ट का अपनोदन करनेवाला' लिया है।

(2) रुद्र का भौतिक आधार

तैत्तिरीय संहिता में अग्नि को रुद्र बतलाया गया है। शतपथ ब्राह्मण में भी अनेक स्थानों पर स्पष्ट शब्दों में अग्नि को ही रुद्र कहा गया है-**यो वै रुद्रः सो अग्निः**(5/2/4/13), **अग्निर्वैरुद्रः**(5/3/1/10)। इसी ब्राह्मण में(1/7/3/8) अग्नि के विषय में जो शब्द कहे गये हैं उनके अनुसार अग्नि के ही 'शर्व' तथा 'भव' ये दो नामान्तर हैं। 'शर्व' तथा 'भव' इसी ब्राह्मण में अन्यत्र(6/1/3/8-18) रुद्र के आठ नामों में परिगणित हुए हैं। शतपथ ब्रा.(9/1/1/1-2) में शतरुद्रिय के मंत्रों की व्याख्या करता हुआ ऋषि कहता है कि अग्नि का दाहकताशक्ति से पूर्ण, अमर रूप ही रुद्र है। अपने इस अविनाशीरूप में अग्नि सर्वभक्षी और सर्वविनाशक है। अतः उसे रुद्र कहते हैं। देवताओं ने उससे डरकर उसे शान्त करने के लिये(शतपथ ब्रा. 9/1/1/1) मन्त्रों का पाठ किया।

अग्नि को रुद्र मानने के बीज ऋग्वेद में भी हैं। उदाहरणार्थ –

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे। (ऋ. वे. 2/1/6)

इस मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य लिखते हैं कि रुद् (दुःख) को दूर करने (द्रावण) के कारण ही अग्नि को रुद्र कहते हैं। आगे चलकर सायण ने रुद्र शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति दी है। उसका पूजन न करके मनुष्य दुःख में पड़कर रोते हैं। ऋ. वे. (3/2/5 एवं 4/3/1) से भी अग्नि एवं रुद्र में एकात्मकता सिद्ध होती है। ऋ. वे. (6/16/39) तथा अथर्ववे. (7/87/1) में भी रुद्र एवं अग्नि में तादात्म्य माना गया है। महाभारत अनुशासनपर्व (160/39 एवं 161/2) में कहा गया है कि –

स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वः स सर्वजित्। (160/39)

वदन्त्यग्निं महादेवं तथा स्थाणुं महेश्वरम् । (161/2)

आगे महाभारत (अनुशासनपर्व 161/3-4) में रुद्र तथा शिव ये दो घोर तथा शान्तमूर्तियाँ बतायी गयीं हैं। इनमें से घोरमूर्ति अग्नि, विद्युत तथा सूर्य के प्रचण्डरूप को सूचित करती है तथा शान्तमूर्ति जल-सोमात्मक है।

वायुपुराण (21/75 तथा 31/23) में अग्नि को कालरुद्र कहा गया है। विष्णुपुराण (6/3/24) में भी कालाग्नि के लिये रुद्र संज्ञा प्रयुक्त है।

उपरोक्त अनेक प्रमाणों से अग्नि को रुद्र स्वीकार कर लेनेपर इसे वेदों का प्रमुख देवता स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि अग्नि को विद्वानों ने वेदों के प्रमुख देवता के रूप में स्वीकार किया है।

(3) रुद्र की जटायें, उनका विष-पान एवं नीलकण्ठत्व

अथर्ववेद (11/2/18) में रुद्र के लिये केशी (बालोंवाला) विशेषण प्रयुक्त हुआ हैं। ऋग्वेद (1/114/1 तथा 1/114/5) तथा यजुर्वेद (16/10, 29, 48 आदि) में रुद्र को कपर्दी (जटाधारी) विशेषण से सूचित किया गया है। महाकाव्यों तथा पुराणों में कपर्दी के ही अर्थ में शिव के लिये 'धूर्जटि' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। महाभारत अनु. पर्व (161/9) में शिव एवं अग्नि का साम्य दिखाते हुए कहा है कि धूम्रवर्णयुक्त जटा होने के कारण ही शिव (रूपी अग्नि) को धूर्जटि कहा जाता है। कुछ ऐसा ही भाव रुद्र की 'नीलशिखण्डिन्' उपाधि का भी है। अथर्ववेद (2/27/6, 11/2/7 इत्यादि) में रुद्र के लिये यह विशेषण (नीलशिखण्डिन्) प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है "नीले केशों या शिखावाला।"

शुक्ल यजुर्वेद (16/7, 8, 28, 56, 57 आदि) तथा कृष्ण यजुर्वेद (तै. सं. 16/1/66/8) में रुद्र की उपाधि नीलग्रीव प्राप्त होती है। ये ही वे बीज हैं जिनपर पौराणिक युग में शिव के विषपान और तदनन्तर नीलकण्ठ हो जाने की कथा आधारित है।

अनेक विचित्र कर्मों के कर्त्ता एवं असामान्य आचरणवाले शिव का विषपानरूपी कर्म के लिये उपयुक्त समझा जाना स्वाभाविक था। बा. रामायण (बालकाण्ड 45/18-26), महाभारत (आदिपर्व 18/41-43), अग्नि पु. (3/1-10) तथा भागवत (8/7/18-46) आदि अनेक स्थानों पर

विषपान का प्रसंग वर्णित है।

उपर्युक्त उद्धरणों में शिव के जिस विषपानरूपी विचित्र कर्म का उल्लेख है उसका संकेत ऋग्वेद के एक अस्पष्ट मन्त्र में प्राप्त होता है। इसके उत्तरार्द्ध में कहा गया है कि केशी ने रुद्र के साथ विषपान किया–

वायुरस्मा उपामन्थत् पिनष्टि स्मा कुनन्नमा।
केशी विषस्य पात्रेण यद् रुद्रेणापिबत् सह।। (ऋ. वे. 10/136/7)

(4) रुद्र के कुछ विशिष्ट अभिधान

बाद के साहित्य में रुद्र के लिये प्रयुक्त कुछ अन्य विशेषण भी ऋ. वे. तथा य. वे. में प्राप्त होते हैं। ऋ. वे. के विशेषणों में 'उग्र' तथा 'ईशान' महत्त्वपूर्ण हैं। 'उग्र' विशेषण रुद्र के लिये तीन बार प्रयुक्त हुआ है– (ऋ. वे. 2/33/9, 2/33/11, 10/126/5)।

पुराणादिकों में ईशान या ईश शब्द शिव का नियमित विशेषण है। इसकी परम्परा प्राचीन है और ऋ. वे.(2/33/9) में ही यह रुद्र का एक प्रमुख विशेषण बन चुका था।

ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम्।।

रुद्र को **'अस्य भूरेः भुवनस्य ईशानः'** कहकर जगत् के ऊपर रुद्र की प्रभुसत्ता व्यक्त की गयी है।(ऋ. वे. 1/114/1–2)[1] में रुद्र के लिये जो क्षयद्वीर विशेषण प्रयुक्त हुआ है उसका भी सम्भवत: यही भाव है। 'क्षि' धातु ऋ. वे. में प्राय: ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त है(उदाहरणार्थ ऋ. वे. 5/42/11)। अत: इस शब्द का अर्थ है 'मनुष्यों' पर शासन करनेवाला। ऋ. वे. (2/1/6 तथा 5/42/11) में उन्हें 'असुर' अथवा शक्तिशाली भी कहा गया है। इस प्रकार ऋ. वे. में ही रुद्र को परमशक्ति के रूप में देखा गया है।

महादेव शब्द भी रुद्र के उत्कर्ष का वाचक है और उनके लिये सर्वप्रथम अथर्ववेद के गौ सूक्त(9/7/7) में यह विशेषण प्राप्त होता है। यहाँ स्मरणीय है कि विष्णु का वैदिक संहिताओं में इतना गौरव नहीं बढ़ा है कि उन्हें महादेव की उपाधि दी जाय। उनके उत्कर्ष का आरंभ ब्राह्मण ग्रन्थों से होता है। अ. वे. में प्राप्त होनेवाला शिव का एक प्रमुख विशेषण है पशुपति। यह लगभग 10 स्थानों पर उनके लिये स्पष्टरूप से प्रयुक्त हुआ है उदाहरणार्थ–

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्। (अ. वे. 2/34/1)

इसी प्रकार अ. वे.(5/24/12, 11/2/1 आदि) में रुद्र को पशुओं तथा मनुष्यों का स्वामी माना गया है। अ. वे.(11/2/1) तथा अन्य स्थानों में उन्हें पशुपति के साथ–साथ भूतपति भी कहा गया है। य. वेद(16/17, 28, 40 आदि) में भी पशुपति विशेषण कई बार आया है। रुद्र की भूतपति

1. **इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मती:।** (ऋ. वे. 1/114/1)
मृला नो रुद्रोत नो मयस्कृधि–क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते। (ऋ. वे. 1/114/2)

उपाधि आगे चलकर रुद्र को भूतों तथा प्रेतों का अधिपति बनाने में सहायक सिद्ध हुई।

ऋ. वे.(7/59/12) तथा शुक्ल यजुर्वेद (3/60) में हमें रुद्र का एक विशेषण 'त्र्यम्बक' प्राप्त होता है। उपरोक्त दोनों स्थलों पर हमें वह प्रसिद्ध मन्त्र प्राप्त होता है जिसे बाद में 'महामृत्युञ्जय मंत्र' की संज्ञा मिली। इसी मन्त्र में यह विशेषण आता है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ..... (ऋ वे. 7/59/12 तथा य. वे. 3/60)

शतपथ ब्राह्मण का मत है कि रुद्र की अम्बिका नामक बहन है। उस स्त्री अम्बिका से संबंधित होने के कारण रुद्र को त्र्यम्बक कहते हैं। (श. ब्रा. 2/6/2/9)

किन्तु इस शब्द की यह व्याख्या संतोषजनक नहीं लगती। 'अम्बक' शब्द का एक अर्थ नेत्र भी होता है। अतः धीरे-धीरे रुद्र के उस विशेषण से उनके तीन नेत्र होने की धारणा परवर्ती काल में विकसित हुई। परवर्ती साहित्य में शिव के ये तीन नेत्र सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि बताये गये।

रुद्र के स्वरूप के विभिन्न तत्त्वों की व्याख्या एवं उनमें सामंजस्य करने की भावना ने विद्वानों को भाँति-भाँति की कल्पनाएँ करने के लिये प्रेरित किया। सबसे जटिल समस्या यही है कि परवर्ती साहित्य में इनके व्यक्तित्त्व में घोर और मांगलिक दोनों ही प्रकार के तत्त्व प्राप्त होते हैं। रुद्र(भयानक) और शिव(कल्याणकारी) ये दोनों शब्द ही विरोधी विचारधाराओं के सूचक हैं। एक ओर तो वे संहारक हैं और दूसरी ओर वे आशुतोष भी हैं जो जरासी भक्ति से प्रसन्न होकर अपने भक्तों को सर्वस्व प्रदान करते हैं।

अंग्रेज विद्वान् क्लेटन[1] का मत है कि रुद्र आर्यों के देवता हैं और शिव अनार्यों के। ऋग्वेद के समयतक आर्य अपने धार्मिक विचारों में स्वतंत्र थे। किंतु धीरे-धीरे अनार्यों के संपर्क के कारण उनके देवता आर्य देवमंडल में प्रविष्ट होने लगे। इस प्रक्रिया में अनार्यों के कल्याणकारी देवता शिव एवं आर्यों के संहारक देवता रुद्र का तादात्म्य होने लगा और धीरे-धीरे इस संयुक्त देवता का महत्त्व बढ़ता गया। यजुर्वे.(की वा. सं. 3/61, 3/63 तथा 16/49, 51 इत्यादि) में रुद्र के साथ आया हुआ 'शिव' विशेषण उस समयतक संपन्न दोनों के तादात्म्य को सूचित करता है। क्लेटन ने 'शिव' को वैदिकभाषा का शब्द नहीं माना है। उनके अनुसार यह द्रविड़ भाषा की 'से' या 'सेव्' जैसी किसी धातु से बना है जिसका अर्थ है "लाल(या भूरा) होना" और इस प्रकार यह रुद्र के 'बभ्रु' विशेषण का पर्यायवाची है।

क्लेटन का मत सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। रुद्र के ऋग्वैदिकस्वरूप में ही भीषण तथा सौम्य दोनों ही रूपों का समावेश है(जैसा हम पहले ही देख चुके हैं)।

ग्रीसवोल्ड का यह विचार कि भंयकर एवं विनाशकारी रुद्र से डरकर उनकी चाटुकारी करते हुए

1. ए. सी. क्लेटन, ऋग्वेद एण्ड वैदिक रिलिजन, मद्रास, 1913

वैदिक कवि उन्हें 'मील्हुष्' (मीढ्वान्) या उदार और सौम्य आदि बताते हैं[1], भी उचित नहीं है। वात्या एवं वर्षा आदि से संबंधित किसी भी देवता के चरित्र में ऐसे विरोधी तत्त्वों का होना अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि एक ओर तो जहाँ उसमें झंझावात की प्रचण्डता (विशेषत: शिशिर ऋतु में) तथा तड़ित्पात आदि दु:खदायी तत्त्व रहते हैं वहीं औषधियों तथा धन-धान्यादि की वृद्धि का भी वह कारण है। 'शिव' शब्द रुद्र के लिये ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है इससे इस धारणा का पूर्णत: निराकरण हो जाता है कि शिव शब्द द्रविड़ भाषा की 'से' धातु से बाद में गढ़ा जाकर आर्यभाषा में लिया गया।

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन।
येभि: शिव: स्ववाँ एवयावभिर्दिव: सिषक्ति स्वयशा निकामभि:।।

(ऋ. वे. 10/92/9)

उपर्युक्त मंत्र से यह सिद्ध होता है कि रुद्र के शिव या मंगलमय होने की धारणा प्राचीन है और किसी आर्येतर देवता के रुद्र से तादात्म्य का परिणाम नहीं है। साथ ही यह 'शिव' विशेषण रुद्र के लिये बहुश: प्रयुक्त होनेपर भी अथर्ववेदतक अन्य देवों के लिये भी आया है जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह वैदिकभाषा का एक प्राचीन सामान्य विशेषण है और इसका प्रयोग रुद्र के लिये ही सीमित नहीं है।

अथर्ववेद में रुद्र की सामान्यत: वे ही विशेषतायें विकसित हुई हैं जिनका उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। परन्तु रुद्र का मानवीकरण ऋग्वेद की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। उनके मुख, आँखें, त्वचा, रूप, उदर, जिह्वा, दाँत तथा नासिका आदि का उल्लेख हुआ है (अ. वे. 11/2/5, 6)। रुद्र का बाण मनुष्यों के अंगों तथा हृदय में प्रविष्ट हो जाता है (अ. वे. 6/90/1)। स्तुतिकर्त्ता रुद्र से प्रार्थना करता है कि वे उसके शत्रुओं, तथा राक्षस-पिशाचादिकों का वध करें (अ. वे. 11/2/25, 26 इत्यादि)। अथर्ववेद में रुद्र की ओषधियों का भी उल्लेख किया गया है और साथ ही स्वयं रुद्र का भी ज्वर तथा व्याधिनाश के लिये आवाहन किया गया है (अ. वे. 6/20/2; 6/57/1; 19/10/5)।

कुछ अंशों में अथर्ववेद रुद्र के विषय में महत्त्वपूर्ण संकेत देता है। इसका पंचदश काण्ड व्रात्यकाण्ड नाम से प्रसिद्ध है। इस काण्ड के अनेक सूक्तों में व्रात्य का रुद्र से घनिष्ठ संबंध बताया गया है । प्रथम सूक्त के चौथे तथा पाँचवें मंत्रों में ही कहा गया है कि "व्रात्य बढ़ा, वह महान् हुआ और महादेव बन गया"। "उसने देवों के ऊपर आधिपत्य (ईशा) स्थापित कर लिया और ईशान बन गया" -

स: अवर्धत स महानभवत् स महादेव: अभवत्। (अ. वे. 15/1/4)
स देवानाम् ईशां पर्येत् स ईशान: अभवत्।। (अ. वे. 15/1/5)

सप्तम तथा अष्टम मंत्रों में रुद्र की भाँति व्रात्य को भी नीललोहित बताया गया है। इन रूपों

1. ग्रिसवोल्ड, रिलिजन ऑफ़ दि ऋग्वेद

से वह अप्रिय व्यक्तियों तथा शत्रुओं का वध करता है, ऐसा ब्रह्मवादी कहते है –

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम्। (अ. वे. 15/1/7)

नीलनैवाप्रियं .....ब्रह्मवादिनो वदन्ति।। (अ. वे. 15/1/8)

15 वें काण्ड के पंचम सूक्त में रुद्र का व्रात्य से और भी घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है। यहाँ रुद्र के विभिन्न रूपों, भव, शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, महादेव तथा ईशान, को व्रात्य का अनुष्ठाता बताया गया है। रुद्र के ये रूप व्रात्य की सभी ओर से रक्षा करते हैं।

व्रात्य शब्द के अर्थ का ठीक–ठीक निश्चय अभीतक नहीं हो सका है।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि व्रात्य एक विशेष प्रकार का परिव्राजक वर्ग था जिनमें ब्रह्मविद्या या वे दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिष्ठित थे जिनका बाद में उपनिषदों में विकास हुआ। वे कर्मकाण्ड में ज्यादा आस्थावान न थे। यह भी संभव है कि व्रात्य योग–शास्त्र या ध्यान, समाधि आदि में निपुण थे। वैदिक कर्मकाण्ड से पृथक एवं लौकिकक्षेत्र में पूज्यमान् देव रुद्र को व्रात्यों ने सम्भवतः इष्टदेव के रूप में स्वीकार कर लिया था। यदि यह अनुमान सत्य मान लिया जाय तो हम श्वेताश्वतर उपनिषद् तथा बाद में पाशुपत–दर्शन में जगत् के आदिकारण के रूप में मान्य रुद्र के उत्कर्ष की व्याख्या कर सकते हैं और दूसरी ओर उनके 'योगीश्वरत्व' तथा योग आदि रहस्यमय गूढ़ विद्याओं के अधिष्ठातृत्व की भी।

जो भी हो इतना तो निश्चित है कि अथर्ववेद के समय रुद्र की लोकप्रियता धीरे–धीरे इतनी बढ़ चुकी थी कि केवल उन्हीं के लिये 'महादेव' विशेषण(अ. वे. 9/7/7 इत्यादि) का प्रयोग हुआ है।

त्र्यम्बक–होम कृष्ण तथा शुक्ल यजुर्वेद में राजसूय–यज्ञ से संबंधित कर्मकाण्ड का एक प्रमुख अंग है(तै. सं. 1/8/6, कठ. सं. 9/7, कापि. सं. 8/11, मै. सं. 1/10/4 तथा वा. सं. 3/57, 58 और 61)। इन उद्धरणों में मूषक को रुद्र का पशु, अम्बिका को 'रुद्र की बहन' तथा मनुष्यों की माता तथा रुद्र को कृतिवासा या खाल पहननेवाला बताया गया है। तथा रुद्र को मूजवत् पर्वत के पीछे जाने की प्रार्थना की जाती है।

रुद्र का पशु मूषक परवर्ती देवशास्त्र में गणेश का वाहन बन गया। अंबिकादेवी बाद के पौराणिक युग में गौरी के रूप में शिव की पत्नी बन गयीं, रुद्र का कृतिवासस् विशेषण बाद में गजासुर या अन्धकवध की कथा का आधार बना। कूर्म पुराण(पूर्वभाग अध्याय 30/18) में शिव ने गजासुर को मारकर उसकी खाल ओढ़ना प्रारंभ कर दिया। लिंग पुराण में उन्हें व्याघ्रचर्मधारी भी कहा गया है (पूर्वार्द्ध 92/80)। शिवपुराण में शिव के द्वारा शरभावतार लेकर नृसिंह का वध करके उनकी खाल पहनने का भी उल्लेख है।(शतरुद्रसं. 12/36)

---

1. 'व्रात्य' शब्द के आध्यात्मिक अर्थ तथा इस काण्ड के मंत्रों की दार्शनिक व्याख्या के लिये देखिये, डॉ. सम्पूर्णानन्द, व्रात्यकाण्ड ऑफ़ अथर्ववेद, मद्रास।

तैत्तिरीय संहिता(1/8/6) में रुद्र के पिनाक का उल्लेख किया गया है। महाकाव्यों तथा पुराणों में यह शिव के धनुष का नाम है। तै. सं. एवं वा. स. (3/61) में रुद्र को अवततधन्वा तथा पिनाकधारी कहा गया है। पुराणों में रुद्र के लिये पिनाकी, पिनाकधृक या पिनाकपाणी विशेषण का आधार उपरोक्त वैदिक संहितायें ही प्रतीत होती हैं।

(5) शतरुद्रियम् और रुद्र

यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय ही रुद्र की स्तुति में प्रयुक्त किया गया है। यह 'रुद्राध्याय' यजुर्वेद की अनेकों संहिताओं में थोड़े बहुत अन्तर के साथ उपलब्ध होता है। वा. सं. का 16 वाँ अध्याय, 'रुद्राध्याय' के नाम से विख्यात है।

यजुर्वेद के शतरुद्रियसूक्त(तै. स. 4/5, कठ. सं 17/11, कापि. सं. 27/1, मै. सं. 2/9/14 तथा वा. सं. 16वाँ अघ्याय) में हमें रुद्र के तत्कालीन व्यक्तित्व की सम्पूर्ण रूप-रेखा प्राप्त होती है। विष्णु या शिव सहस्त्रनाम जैसे स्तोत्रों की भाँति यहाँ भी रुद्र को सैकड़ों विशेषणों तथा उपाधियों से विभूषित किया गया है। स्थूल अथवा सूक्ष्म, भौतिक अथवा आध्यात्मिक कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो रुद्र से संबंधित न हो और जिसपर रुद्र का आधिपत्य न हो। यद्यपि रुद्र के लिये शिव विशेषण यहाँ कई बार प्राप्त होता है और उन्हें 'मयोभु', 'शंकर' तथा 'मीढुष्टम' भी कहा गया है फिर भी रुद्र के भयानक रूप से भयभीत होकर उनसे अपने कल्याणमयरूप को दिखाने की प्रार्थना की गयी है।

रुद्र को यहाँ अघोर भी कहा गया है(वा. सं. 16/2)। शिव का शायद ही कोई ऐसा प्रमुख विशेषण होगा जिसको शतरुद्रिय में रुद्र से सम्बन्धित न किया गया हो। रुद्र का लौकिकस्वरूप यजुर्वेद के समय अत्यन्त प्रबल था और उन्हें मानव-समाज के क्या उच्च क्या निम्न, सभी प्रकार के वर्गों का स्वामी माना जाता था।

जैसे श्रीमद्भगवद्गीता(अ. 11) में भगवान् कृष्ण के 'विश्व-रूप' का वर्णन है वैसे ही उपरोक्त रुद्रसूक्तों में रुद्रस्वरूपी परमेश्वर के विश्वरूप का वर्णन किया गया है। रुद्र के विश्वरूप के प्रसंग में विद्युत, अग्नि, वायु, सोम, गृत्स, पुलस्ति, भिषक्, सभा, सभापति, धन्वी, सुआयुध, कवची, अश्वपति, वृक्षपति, पशुपति, शिल्पी, रथकार, सूत, कुलाल, निषाद, परिचर, स्तेन आदि-ये सब रुद्र के रूप हैं, ऐसा(रुद्रसूक्त में) कहा गया है। गीता में भगवान् की केवल थोड़ी सी विभूतियाँ कही गयीं हैं जबकि रुद्रसूक्त में उससे कई गुना अधिक विभूतियों का वर्णन किया गया है जो उनसे अधिक व्यापक हैं।

(6) रुद्राः या रुद्र के गण

शतरुद्रिय के प्रथम 53 मंत्रों में रुद्र की विशेषताओं का गुणगान करने के बाद आगे के 13 मन्त्रों में रुद्रगण(या रुद्राः) का वर्णन किया गया है। ये रुद्राः रुद्र के आधिपत्य में रहनेवाले उनके

अनुचर हैं जिनका कार्य मनुष्यों को कष्ट देता है। इन रुद्रों की लगभग वे ही विशेषताएँ बतायी गयीं हैं जो प्रायः रुद्र के लिये बतायी गयीं हैं। इनकी संख्या गणनाहीन है। वे भूमि, समुद्र, अन्तरिक्ष तथा आकाश सभी स्थानों में व्याप्त हैं। कुछ वृक्षों पर रहते हैं तो कुछ भूमि के अन्दर भी विचरण करते हैं। कुछ भूरे, कुछ नीलग्रीव तथा कुछ विलोहित हैं। वे जटायें रखते हैं पर उन्हें ऊपर नहीं बाँधते। नदी, तालाब आदि स्थानों में वे बर्छियाँ तथा धनुषबाण लेकर घूमते रहते हैं। आकाशचारी रुद्रों के बाण हैं वर्षा, अन्तरिक्षचारी के वायु, भूमिचारी के अन्न जिनसे वे व्याधियाँ फैलाते हैं।

उपरोक्त वर्णन से ऐसा स्पष्ट होता है कि ये रुद्राः आजकल के लोकविश्वास के भूत, प्रेत, ब्रह्मराक्षस आदि के समान सूक्ष्म शरीरधारी जीव हैं। इन रुद्रों को रुद्र के गण कहा गया है। इन गणों(रुद्र की सेना) का उल्लेख अथर्ववेद(11/2/31) में प्राप्त होता है। यजुर्वेद के अन्तर्गत सभी गणों के स्वामी को रुद्र बताया गया है। शतरुद्रिय में ही **'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च'**(मन्त्र 25) कहकर गण एवं गणपति दोनों की वन्दना की गयी है। वा. सं.(23/19) में जो **"गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ँ हवामहे"** आदि प्रसिद्ध मन्त्र आते हैं वे भी संभवतः रुद्र और उनके गणों के ही बोधक हैं।

रुद्र के इन गणों का बाद के साहित्य में बड़ा विचित्र तथा मनोरंजक वर्णन है। इनमें से कोई बौना, कोई लंबा, कोई कुबड़ा तो कोई मोटा है। किसी का मुख व्याघ्र की भाँति तो किसी का हाथी की तरह है, कोई अजमुख और कोई मेषमुख है(उदाहरणार्थ मत्स्य पुराण 153/530-536)। वहाँ पर विवाहोपरान्त घर आयी हुई पार्वती शिव के इन विचित्र गणों को देखती है और उत्सुकतावश शिव से इनकी संख्या आदि के बारे में पूछती है(153/537)। शिव उत्तर देते हैं कि ये गण करोड़ों की संख्या में हैं, इनकी गणना नहीं हो सकती। सारा संसार इनसे भरा हुआ है। तीर्थों में, सड़कों पर, दानवों के शरीर आदि में सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। इनका आहार भी अनेक प्रकार का है। कोई अग्नि तो कोई जल का फेन, कोई धूम, कोई मधु, कोई रक्त तो कोई वायु खाकर जीवित रहता है। ये इतने विविध कर्म और गुणवाले हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता(मत्स्य पु. 153/538-541)।

वायुपुराण के एक उल्लेख से यह स्पष्टरूप से सिद्ध होता है कि पुराणों में वर्णित रुद्रगण शतरुद्रिय सूक्त में रुद्राः नाम से विख्यात हैं। दसवें अध्याय(45-62) में एक कथा आती है कि ब्रह्माजी ने एक बार नीललोहित महादेव को सृष्टि करने के लिये कहा। इसपर महादेवजी ने अपने समान गुण और स्वभाववाले अमर मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। ये सभी चर्म धारण किये, हरित केश, क्रूरदृष्टि और कपालधारी थे। इनके कई हाथ, मुख तथा नेत्र थे ..... आदि। इस रौद्रसृष्टि को देखकर ब्रह्माजी घबराये और उनसे सौम्य तथा मरणशील सृष्टि करने के लिये कहा। शिव ने कहा, ऐसी प्रजा पैदा करना हमारे वश का नहीं है। यह काम आप ही कीजिये। पर "हमने जो इन नीललोहित और विरूप जीवों को पैदा किया है ये महाबली देवगण भूलोक और अन्तरिक्ष में रुद्र नाम से प्रसिद्ध होकर

यज्ञीय देवों के मध्य परिगणित होंगे एवं शतरुद्र नाम से विख्यात होकर यज्ञ-भाग का भोग करेंगे।"

वायुपुराण (54/25-30) तथा (69/240-256); स्कन्दपुराण, काशीखण्ड (53/8-12); वराहपुराण (अध्याय 21) आदि में भी शिव के इन गणों का विशेष वर्णन है।

वेदों में कहीं पर एक रुद्र तो कहीं पर अनेक रुद्रों की चर्चा की गयी है। इन चर्चाओं से लोगों में भ्रम हो जाता है कि रुद्र एक हैं या अनेक। अगर वेदों में दोनों प्रकार के कथन मिलते हैं तो उनका क्या अभिप्राय है?

यजुर्वेद (16/54) में **"असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्"** (अर्थात् "असंख्य और हजारों रुद्र भूमि के ऊपर हैं") कहा गया है। पुनः निम्नलिखित कथनों पर विचार करें :

..... रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे।। (ऋ. वे. 10/64/8)
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः ..... । (ऋ. वे. 7/35/6)
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृलयाति नः ..... (ऋ. वे. 10/66/3)
..... रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम्। (ऋ. वे. 7/10/4)

इन मन्त्रांशों में कहा गया है कि एक रुद्र अनेक रुद्रों के साथ रहता है। इन कथनों के आधार पर यह मानना पड़ेगा कि एक रुद्र भिन्न है और अनेक रुद्र उससे भिन्न हैं। श्वेता. उ. (3/2), तै. सं. (1/8/6/1), अथर्वशिरस् उप. (5) में कहा गया है कि **"एको रुद्रो न द्वितीयाय"** अर्थात् रुद्र एक है, दूसरा रुद्र नहीं है। पुनः अथर्ववेद (7/92/1) में कहा गया है कि जो रुद्र अग्नि में, जल में, ओषधि-वनस्पतियों में है और जो सब भुवनों का निर्माण करता है, उस तेजस्वी रुद्र को हमारा नमस्कार हो। पुनः ऋ. वे. (6/49/10) में कहा गया है कि सब भुवनों का रक्षक रुद्र है, वह बड़ा, ज्ञानी, प्रेरक तथा जरारहित है, उसकी हम दिन और रात्रि में प्रशंसा करते हैं। उपरोक्त मन्त्रों से रुद्र की अद्वितीयता प्रतिपादित होती है।

इन विरोधी विचारों में समन्वय का एक रास्ता पहले ही सुझाया जा चुका है जिसमें 'एकरुद्र' का अर्थ परमात्मा, जगत् स्त्रष्टा तथा संहरता आदि है तथा 'अनेकरुद्र' का अर्थ रुद्रगण है। कई बार इनका आध्यात्मिक अर्थ भी किया जाता है जिसके अनुसार 'एक रुद्र' का अर्थ परमात्मा तथा अनेक रुद्र का आत्मा किया जाता है। आत्मा ईश्वरांश होने के कारण अन्य सभी गुणों में ईश्वर के समकक्ष ही है। जैसे अमरता, सत्स्वरूप, चितस्वरूप और अन्त में मुक्त हो जानेपर उसके समान हो जाना आदि। इसी प्रकार रुद्रगण भी रुद्र के समान ही स्वरूप, आयुध एवं अन्य गुण रखते हैं। वेद के भाष्यकार सायणाचार्य ने भी 'एकरुद्र' का अर्थ परमेश्वर ही माना है (जैसे उनके ऋ. वे. 6/28/7 और अथर्ववेद 1/19/3, 7/92/1 तथा 11/2/3 के भाष्य देखें)। अथर्ववेद (13/4 इत्यादि) में भी रुद्र, महादेव, मृत्यु, अग्नि, वायु, सूर्य, धाता और विधाता आदि को परमात्मा का ही रूप माना गया है।

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ.....।
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः। (अथ. वे. 13/4/3-5)

(7) रुद्र की अष्ट मूर्तियाँ

कौषीतकि ब्राह्मण(6/1-9) एवं शतपथ ब्राह्मण(6/1/3/8-18) में रुद्र के आठ नामों(शर्व, पशुपति, उग्र, अशनि(विद्युत), भव, महादेव तथा ईशान) की उत्पत्ति संबंधी कथाएँ दी गयी हैं। साथ ही इन नामों का प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों से तादात्म्य भी किया गया है। जिन तत्त्वों से जिस नाम का तादात्म्य स्थापित किया गया हैं उनमें पर्याप्त भेद इन दोनों ब्राह्मण ग्रन्थों में पाया जाता है। एक ब्राह्मण के अनुसार -

भवः आपः, शर्वो अग्निः, पशुपतिर्वायुः, उग्रो देव ओषधयः, महान्देव आदित्यः, यद्रुद्रश्चन्द्रमाः, यदीशानो अन्नम्, यदशनिरिन्द्रः। निम्नलिखित तालिका से भेद स्पष्ट हो जायगा।

कौषीतकि ब्रा.		**शतपथ ब्रा.**	
अग्निः	(शर्व)	अग्निः	(रुद्र)
आपः	(भव)	आपः	(शर्व)
ओषधयः	(उग्र)	ओषधयः	(पशुपति)
वायुः	(पशुपति)	वायुः	(उग्र)
अन्नम्	(ईशान)	पर्जन्य	(भव)
इन्द्र	(अशनि)	विद्युत	(अशनि)
चन्द्रमा	(रुद्र)	चन्द्रमा	(महान्देव)
आदित्य	(महान्देव)	आदित्य	(ईशान)

रुद्र के इन नामों की व्युत्पति के बारे में शतपथ ब्राह्मण कर्मकाण्डीय प्रमाण देकर उसके पीछे तर्क की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा करता है।

कौषीतकि के अनुसार रुद्र के रूप होने के कारण आपः, अग्नि तथा वायु आदि सौम्य तत्त्व कभी-कभी भयंकर होकर विनाश कर सकते हैं।

भौतिक जगत् के उक्त आठ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों से रुद्र के तादात्म्य से स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया था। प्रकृति की प्रत्येक प्रमुख वस्तु उनका ही रूप मानी जाने लगी थी और इस प्रकार उनका व्यक्तित्व महनीय एवं सर्वव्यापी हो गया था। यजुर्वेद(16/8, 13, 29; 31/1 आदि), ऋ. वे.(10/90/1) तथा अथ. वे.(19/6/1) आदि में उनके विशेषण 'सहस्राक्ष' तथा 'सहस्रपात्' उन्हें सृष्टि के आदि कारण के रूप में स्वीकार करने की प्रेरणा देते हैं।

रुद्र का इन तत्त्वों से संबंध पुराणों में भी कुछ परिवर्तन के साथ पाया जाता है। उपरोक्त सूची से ओषधि, अन्न और अशनि इन तीन असंगत तत्त्वों को हटाकर पुराणों ने आकाश, पृथ्वी तथा दीक्षित यजमान को रुद्र की अष्ट मूर्तियों में परिगणित कर दिया। परवर्ती साहित्य में शिव की आठ मूर्तियाँ निम्न हैं-पञ्चमहाभूत(अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश), सूर्य, चन्द्रमा, तथा यजमान या शिवभक्त।

(8) दक्ष – यज्ञविध्वंस

तै. सं.(2/6/8) में दक्ष-यज्ञविध्वंस की कथा का प्राचीनतर रूप प्राप्त होता है। इसमें कहा गया है कि देवों ने एक बार रुद्र को यज्ञ से बहिष्कृत कर दिया। इसपर रुद्र ने क्रुद्ध होकर यज्ञ को बाण से विद्ध कर डाला। तब सभी देवता रुद्र के पास पहुँचे और उनसे यज्ञ को सकुशल कर देने की प्रार्थना की। तै. सं.(3/2/4) में रुद्र को मखवहत् कहा गया है(**"नमो रुद्राय मखघ्ने"**)।

दक्ष-यज्ञविध्वंस की कथा के अन्त में रुद्र के लिये देवगण जो भाग निर्धारित करते हैं वह यज्ञ से बची हुई उच्छिष्ट सामग्री होती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी रुद्र को यज्ञोच्छिष्ट ही अर्पित किये जाने का समर्थन है। इसका उल्लेख ऐतरेय ब्रा. में चर्चित नाभानेदिष्ठ की कथा में होती है(ऐ. ब्रा. 5/2/9)। यह कथा थोड़े बहुत अन्तर के साथ शिवपुराण(शतरुद्रस. अ. 29) में भी प्राप्त होती है। तै. स. (3/1/9) में भी यह कथा किंचित् भिन्न रूप से आती है। भागवत(9/4/1-11) में भी यह कथा थोड़े भेद से प्राप्त होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दक्ष-यज्ञविध्वंस की कथा का स्रोत भी वैदिक संहितायें हैं।

(9) रुद्र द्वारा त्रिपुरासुर – विनाश

पुराणों में तथा महाकाव्यों में रुद्र का त्रिपुरान्तक या त्रिपुरारि विशेषण अत्यन्त सामान्य है। यह विशेषण उन्हें असुरों की तीन पुरियों, जो क्रमशः लौह, रजत तथा स्वर्ण से बनीं थीं, को नष्ट करने पर मिला है। इस कथा का प्रारंभिक रूप अनेक ब्राह्मणों तथा कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं में प्राप्त होता है। विशेषतः तै. सं.(6/2/3), मै. सं.(3/8/1), कठसं.(24/10), कापि. सं.(38/3), श. ब्रा. (3/4/4/3-20) तथा ऐ. ब्रा.(1/4/6/8) में यह कथा सोमयाग से संबंधित उपसद् नामक कृत्य-विशेष की व्याख्या में कही गयी है।

ऐ. ब्रा. तथा श. ब्रा. में इस कथा का प्राचीनतमरूप प्राप्त होता है। यहाँ कहा गया है कि एक बार असुरों ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश में तीन दुर्ग बनाये जो क्रमशः लोहे, चाँदी तथा सोने के थे .....देवों ने उपसदों का सहारा लिया .....प्रथम उपसद से उन्होंने उनको पृथ्वी के दुर्ग से भगा दिया, द्वितीय के द्वारा अन्तरिक्ष से और तृतीय के द्वारा आकाश से .....। उपसदों ने देवों के लिये बाण का काम किया। अग्नि उस बाण की नोक थी, सोम फाल (शल्य), विष्णु शलाका एवं वरुण पत्र। घी से उन्होंने धनुष का काम लिया .....(ऐ. ब्रा. 1/4/6/8)।

ऐ. ब्रा. तथा श. ब्रा. में इस प्रसंग में रुद्र का कोई उल्लेख नहीं है। इसका कारण यह है कि इनमें उपसदों की केवल कर्मकाण्डीय व्याख्या दी हुई है, उसका कथात्मक रूप अभी विकसित नहीं हुआ है। तै. सं. में यह प्रसंग छोटी सी कथा का रूप धारण करता है। ऐ. ब्रा. एवं श. ब्रा. का बाण एवं धनुष प्रतीकात्मक हैं। किन्तु तै. सं. में रुद्र असुरों के इन दुर्गों के प्रमुख नाशक के रूप में उपस्थित होते हैं। देवों से 'पशुपति' होने का वर प्राप्त करके रुद्र अग्नि-विष्णु-सोमात्मक उपसद-बाण छोड़ते

हैं(तै. सं. 6/2/3)। तै. सं. इन पुरों से केवल असुरों के भगा दिये जाने का उल्लेख करती है, किन्तु मै. सं. का कथन है कि रुद्र के बाण से उन तीनों दुर्गों में आग लग गयी और वे नष्ट हो गये(मै. सं. 3/8/1)। महाभारत के अनुशासनपर्व(160/25-31) में त्रिपुरदाह की कथा जो पायी जाती है वह अधिकांशतः तैत्तिरीय तथा मैत्रायणी सं. में प्राप्त होती है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ रुद्र के बाण का पुंख यम बनते हैं, वेद धनुष और गायत्री प्रत्यञ्चा तथा सारथी ब्रह्मा। महाभारत के कर्णपर्व के दो(33, 34) अध्यायों में प्राप्त होनेवाली त्रिपुरदाह की कथा काफी विकसित एवं परिवर्धित है।

सर्वाधिक विस्तार से यह कथा मत्स्य पु. में (129 वें अध्याय से लेकर 140 वें अध्यायतक, पूरे 12 अध्याय तथा 626 श्लोकों में) खण्डकाव्य के रूप में पायी जाती है। श्रीमद्भागवत(7/10/51-70) में वर्णित त्रिपुरदाह की कथा में महाभारत की अपेक्षा कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है, इतना अन्तर यहाँ अवश्य है कि विष्णु भगवान् एक गौ का रूप धारण करके ब्रह्माजी को बछड़ा बनाकर, दैत्यों को अपनी माया से विमोहित करते हुए त्रिपुर में मय द्वारा निर्मित अमृतयुक्त बावड़ी का पान कर जाते हैं जिससे असुर असहाय हो जाते हैं और शिव का कार्य आसान हो जाता है। शिवपुराण आदि में भी यह कथा किंचित भेद से प्राप्त होती है।

(10) शिव का त्रिशूल

वैदिक ग्रन्थों में शिव का प्रमुख अस्त्र धनुष है किन्तु बाद में उसका स्थान त्रिशूल ने ले लिया। यद्यपि बाद के ग्रन्थों में भी पिनाक एवं पाशुपतास्त्र की चर्चा की गयी है और शिव को धनुष विद्या का आचार्य माना गया है(रामायण बा. का. 55/12-18 में विश्वामित्र तथा महा. वन. प. 40/8-21 में अर्जुन शिव की कृपा से धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करते हैं), किन्तु उनका सर्वाधिक प्रिय अस्त्र त्रिशूल ही है। शिव के इस त्रिशूल का बीज तै. सं.(5/5/6) में है। यहाँ कहा गया है कि अग्नि ही रुद्र है, उसके तीन शूल हैं .....।

(11) शिवसंबंधी अन्य कथाएँ

रुद्र के संबंध में मदन-दहन की कथा का बीज वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से नहीं मिलता। इसी प्रकार शिव के द्वारा गंगा-धारण की कथा है। ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र को उत्तर दिशा की ओर रहनेवाला तथा शतरुद्रिय या यजुर्वेद(16/3, 4) में पर्वतों पर रहनेवाला बताया गया है। पुराणों में कैलास पर्वत ही उनका विशेष निवास स्थान माना गया है जहाँ से गंगा नदी निकलती है। मात्र इतना आधार ही गंगा का शिव से संबंध बताता है।

मत्स्यपु.(अ. 179), कूर्मपुराण (पू. अध्याय 15) तथा शिवपुराण (रुद्र. स. युद्धखण्ड अ. 44-49) आदि में अन्धकासुर के दलन का वर्णन है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह अन्धक वैदिक अर्धक ही है। अ. वे.(11/2/7) में रुद्र को अर्धकघाती कहा गया है। इसी का पौराणिक रूप अन्धक या अन्तक है।

वैदिक साहित्य में सर्वत्र रुद्रों के एकादश होने का उल्लेख किया गया है (उदाहरण के लिये ऐ. ब्रा. 1/2/4), किन्तु कहीं भी उनके नामों का उल्लेख नहीं हुआ है। श. ब्रा. (11/6/3/7) ने स्वेच्छा से दस प्राणों एवं आत्मा को एकादश रुद्र घोषित किया है। वायुपु. (25/21) में भी प्राणों को रुद्र कहा गया है। गीता (10/23) में भगवान कृष्ण कहते हैं कि "मैं रुद्रों" मैं शंकर हूँ इससे प्रतीत होता है कि महाभारत में 11 रुद्र अलग-अलग माने जाते थे और शंकर या शिव उनमें से एक थे। किन्तु उनको शेष दस का नायक समझा जाता था। विष्णु पु. (1/7/12-14) में भी एकादश रुद्र एक ही शिव के विभिन्न रूप प्रतीत होते हैं। मत्स्य पु. (171/35-40) में 11 रुद्रों के साथ शिव को जोड़कर 12 रुद्र बताये गये हैं। जहाँ मत्स्यपु. का उपरोक्त उद्धरण 11 अथवा 12 रुद्रों को मानता है वहीं इसी पुराण में अन्यत्र (5/29-32) कहा गया है कि रुद्रों की संख्या 84 करोड़ है जिनमें 11 रुद्र प्रधान अथवा गणेश्वर हैं। परन्तु गणेश्वर रुद्रों के नामों की सूची तथा उपरोक्त उद्धरण के 11 नामों की सूची में पर्याप्त अन्तर है। भागवतपु. (6/6/17-18) में भी रुद्रों की संख्या करोड़ों मानी गयी है जिनमें 11 प्रमुख हैं। पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड 6/29-32) में भी इसी तरह की बात कही गयी है।

एकादश रुद्रों के नामों का उल्लेख वेदों में न होते हुए भी बाद के साहित्य में दिये गये उनके नाम वेदों में बिखरे हुए पाये जाते हैं। उनमें से अधिकांश रुद्र के प्राचीन अथवा नवीन विशेषणमात्र हैं। भव, भीम, उग्र, महान् (देवः), बहुरूप (**स्थिरेभिरंगैः पुरुरूप उग्रो.....**, ऋ. वे. 2/33/9), ईश्वर (या ईशान), शंभु, कपर्दी एवं त्र्यम्बक रुद्र के वैदिक विशेषण हैं तथा विरुपाक्ष, पिनाकी, हर तथा कपाली आदि पौराणिक।

(12) रुद्रदेव परमतत्त्व के रूप में

अथर्ववेद में कहा गया है 'अग्नि, वायु, विद्युत, सूर्य आदि प्रकाशवाले समूह में जो रुद्र पुरुषरूप से प्रविष्ट हुआ है तथा जो जल, चन्द्रमा, नक्षत्रादिकों में व्यापक है, वही प्राणियों के हृदय, कण्ठ और चक्षु में तथा वनस्पतियों के अन्तर्गत अन्न, घास आदि में स्थित है। इन नाम-रूपात्मक समस्त चराचर को उत्पन्न करके पालन करने तथा अन्तकाल में इनका संहार करने में जो समर्थ है उस अद्वितीय व्यापक रुद्र के लिये नमस्कार है।'

यो अग्नौ रुद्रो यो अपस्व-
न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृषे
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये। (अथर्ववेद 7/87/1)

इसी प्रकार अथर्ववेद (13/4/3-5) में जिसका उद्धरण पहले ही आ चुका है, कहा गया है कि जो रुद्र हैं, वहीं महादेव हैं, वही अग्नि व सूर्य हैं। अर्थात् विभिन्न देव एक ही सत्ता रुद्रदेव की अभिव्यक्तियाँ हैं। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में कहा गया है कि-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋ. वे. 1/164/46 तथा अ. वे. 9/10/28)

इस मन्त्र में 'अग्नि' शब्द दो बार आया है, एक बार अग्नि देवता के लिये और दूसरी बार रुद्र के लिये। इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि जो एक रुद्र है उसे ही बहुत प्रकार से मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करते हुए इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु, यम और उत्तम प्रकाशयुक्त, उदय-अस्त रूप से गमन करने वाले, सूर्यरूप पक्षी इत्यादि नामों से पुकारते हैं।

अथर्ववेद (15/1/4, 5) में, जिसका उद्धरण पहले ही आ चुका है, बताया गया है कि 'व्रात्य' (योगियों एवं ज्ञानियों के उपास्यदेव) ही महादेव एवं ईशान बन गया और सभी देवताओं पर आधिपत्य जमा लिया। अथर्ववेद (9/7/7) में भी रुद्र के लिये महादेव शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार यजुर्वेद (16/9, 53) में उन्हें ईशान एवं भगवान् कहा गया है।

ऋ. वे. में कहा गया है-

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं.....कविनेषितासः।। (ऋ. वे. 6/49/10)

भावार्थ यह है कि जो सब भुवनों का रक्षक रुद्र है, वह बड़ा ज्ञानी, प्रेरक, तथा जरारहित है, उसकी हम दिन में तथा रात्रि में प्रशंसा करते हैं।

उपरोक्त उद्धरणों पर अगर हम विचार करें तो रुद्रदेव या शिव परमतत्त्व सिद्ध होते हैं। इनके दो रूप-उग्र एवं सौम्य हैं। इसी प्रकार वे सगुण-साकार एवं निर्गुण-निराकार भी हैं।

यजुर्वेद में एक स्थल पर कहा गया है-

पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।। (16/28)

यह मन्त्र का उत्तरार्ध भाग है जिसमें भगवान् शिव को पशुपति, नीलकण्ठ एवं श्वेतकण्ठ होने की बात कही गयी है। इस मन्त्र में कई लोग भगवान् शिव के अर्धनारीस्वरूप की झलक पाते हैं। भगवान् शिव नीलकण्ठी हैं और उमा श्वेतकण्ठी। इसी कारण उक्त प्रार्थना में एक साथ ही भगवान् शिव के नीलकण्ठ एवं श्वेतकण्ठ होने की बात कही गयी है।

अगर हम इस व्याख्या को स्वीकार कर लेते हैं तो भगवान् शिव के साकार विग्रह में नर एवं नारी दोनों ही तत्त्व विद्यमान हैं। अर्थात् शिव-शक्ति की एकता तथा उनके सम्मिलित विग्रह, जिसका विकास बाद के साहित्य में होता है, का संकेत वैदिक संहिताओं में भी उपलब्ध है।

शिव ही मोक्षदाता हैं इसीलिये ऋ. वे. (7/59/12) तथा यजुर्वेद (3/60) में आये हुए मन्त्र (जिसे कालान्तर में महामृत्युंजय मन्त्र की संज्ञा प्राप्त हुई) में 'त्र्यम्बक' (भगवान् शिव) से मोक्षप्राप्ति के लिये प्रार्थना की गयी है। मन्त्र इस प्रकार है-

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

(ऋ. वे. 7/59/12 तथा य. वे. 3/60)

इसी प्रकार यजुर्वेद के 16 वें अध्याय में कहा गया है–

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्करायच
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।। (य. वे. 16/41)

भावार्थ है–कल्याण(मोक्ष) एवं सुख के मूल स्रोत भगवान् शिव को नमस्कार है। कल्याण(मोक्ष) के विस्तार करनेवाले तथा सुख के विस्तार करनेवाले भगवान् शिव को नमस्कार है। मंगलस्वरूप और मंगलमयता की सीमा भगवान् शिव को नमस्कार है। दूसरे शब्दों में मोक्ष, सुख एवं लौकिक सुख प्रदान करनेवाले भगवान् शिव को नमस्कार है।

उपरोक्त मन्त्र के अतिरिक्त भी यजुर्वेद में ऐसे मन्त्र हैं(जैसे 16/51 आदि) जिनसे यह स्पष्ट होता है कि भगवान् शिव भोग एवं मोक्ष के दाता, कर्मों के फलदाता तथा कल्याणकर्त्ता हैं।

उपसंहार

प्रत्येक वेदों में कई मण्डल(अध्याय) होते हैं तथा उन मंडलों में अनेकों सूक्त होते हैं तथा प्रत्येक सूक्त में अनेक श्लोक पाये जाते हैं। प्रत्येक सूक्त के प्रारंभ में सूक्त के ऋषि, देवता तथा छंद का उल्लेख करने के बाद ही मन्त्रों या श्लोकों का वर्णन किया जाता है। कुछ सूक्तों में किसी एक देवता का वर्णन न होकर अनेक देवताओं का साथ–साथ वर्णन होता है।

ऋग्वेद में केवल 3 सूक्त–प्रथम मण्डल का 114 वाँ, द्वितीय मण्डल का 33 वाँ तथा सप्तम मण्डल का 46 वाँ सूक्त–पूर्णतः रुद्र देवता के विषय में हैं। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं के साथ इनका उल्लेख पचासों बार आता है। ऋग्वेद में रुद्र का स्थान अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि की तुलना में बहुत ही कम है परन्तु यदि रुद्र को अग्नि स्वीकार कर लें(जैसा कि हम पहले यह दिखाने का प्रयास कर चुके हैं) तो ऋ. वे. के प्रमुख देवता अग्नि होने के कारण रुद्र को भी उसका प्रमुख देवता स्वीकार किया जा सकता है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में रुद्र का स्थान बहुत ही परिवर्द्धित एवं महत्त्वपूर्ण है। यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय ही इनकी स्तुति में प्रयुक्त किया गया है। यह 'रुद्राध्याय' यजुर्वेद की अनेक संहिताओं में थोड़े–बहुत अन्तर के साथ उपलब्ध होता है। वाजसनेयी संहिता का 16 वाँ अध्याय 'रुद्राध्याय' के नाम से विख्यात है। अथर्ववेद के 11 वें काण्ड के द्वितीय सूक्त में रुद्रदेव की विस्तृत स्तुति की गयी है।

वेदों में रुद्र के दोनों रूपों–क्रूर एवं सौम्य, प्रलयकारी एवं कल्याणकारी–का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार उनके सगुण–साकाररूप का भी वर्णन मिलता है। आजकल हमें शिवसंबन्धी जितने विशेषण एवं कथाएँ प्राप्त होती हैं उनमें से अनेक का मूल वेदों में पाया जाता है। सूत्र रूप में जो

विशेषण या कथाएँ वेदों में नहीं हैं, जरुरी नहीं कि वे वैदिक नहीं हैं। हो सकता है कि वेदों की प्राचीन लुप्त शाखाओं में उनका वर्णन हो।

ऋग्वेद में शिव या रुद्र के सगुणरूप का वर्णन है जिसमें कहा गया है कि वे गौरवर्ण के तेजस्वी युवक हैं। उनका शरीर बलिष्ठ है, होठ अत्यन्त सुन्दर हैं, उनके मस्तक पर बालों का एक जटा समूह है जिसके कारण वे कपर्दी कहलाते हैं। उनका रंग भूरा तथा आकृति दैदीप्यमान है। वे नानारूप धारण करनेवाले(पुरुरूपः) हैं। यजुर्वेद के रुद्राध्याय एवं अथर्ववेद के रुद्रसूक्त में उनके सगुण स्वरूप का अधिक विशद वर्णन है। रुद्र के अनेक अंगों के वर्णन के साथ-साथ उनके सहस्त्र नेत्र होने(सहस्त्राक्ष) तथा उनकी गर्दन का रंग नीला(नीलग्रीव) तथा कण्ठ उज्जवल(शितिकण्ठ) होने का भी वर्णन है।

रुद्राध्याय में उन्हें दुनियाँ के तमाम विशेषणों से युक्त माना गया है। वहाँपर उन्हें धनुष-बाण-धारी(जिनके धनुष का नाम पिनाक है), बज्रधारी, खड्गधारी, चर्मधारी(कृति वसानः) आदि माना गया है। रुद्र को अत्यन्त बलशाली तथा तरुण माना गया है तथा उनका तारुण्य सदा टिकनेवाला बताया गया है। अर्थात् उन्हें चिरयुवा(जरारहित) के रूप में माना गया है।

रुद्र को मरुतों का पिता भी माना गया है। ऋ. वे.(7/59/12) एवं शुक्ल यजुर्वेद (3/60) में उन्हें त्र्यम्बक भी कहा गया है। रुद्राध्याय में रुद्र के लिये भव, शर्व, पशुपति, उग्र, भीम शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ प्रत्येक दशा में वर्त्तमान प्राणियों के ऊपर उनका अधिकार भी बताया गया है। विश्व में ऐसा कोई स्थान नहीं है, चाहे स्वर्ग, चाहे अन्तरिक्ष, चाहे भूतल या भूतल से नीचे, जहाँ भगवान् रुद्र का आधिपत्य न हो । रुद्र को जगत् के समग्र पदार्थों का स्वामी कहा गया है।

रुद्र अग्निरूप या अग्नि के प्रतीक हैं। रुद्र के लिंग की पूजा प्रचलित होने के संदर्भ में अनेक पुराणों में यह कथा आती है कि विष्णु एवं ब्रह्मा में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद छिड़ जाने पर उनके मध्य अग्नि का एक विशाल स्तंभ आकर खड़ा हो गया जो कालान्तर में तेजोलिंगरूप(जो शिव की अष्टमूर्तियों में से माना गया है तथा जिसका मन्दिर अरुणाचल में है) में पूजित हुआ। रुद्र के अग्निमयरूप को पुराणों ने इस घटना के माध्यम से समझाया है।

अग्नि शिखा ऊपर उठती है अतः रुद्र के उर्ध्वलिंग की कल्पना की गयी है। अग्नि को वेदी पर जलाते हैं। इसी कारण शिव जलधारी के बीच रखे जाते हैं। अग्नि में घृत की आहुति दी जाती है इसलिये शिव के ऊपर जल से अभिषेक किया जाता है। शिव-भक्तों के लिये भस्म-धारण करने की प्रथा की भी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। उपरोक्त व्याख्या के पोषक वैदिक प्रमाणों पर ध्यान दिया जा सकता है जिसमें रुद्र को अग्नि से अभिन्न माना गया है जैसे ऋ. वे.(2/1/6), अथर्व वे.(7/87/1) श. ब्रा.(3/1/3) आदि। पुनः रुद्र की आठमूर्तियों में रुद्र को 'अग्नि', शर्व को 'जल' रूप ..... माना गया है। शत्पथ ब्राह्मण(1/7/3/8) में रुद्र की अष्टमूर्तियों के नाम वस्तुतः अग्नि

के ही नाम हैं। यजुर्वेद(39/8) में भी अग्नि, अशनि, पशुपति, भव, शर्व, ईशान, महादेव तथा उग्र को एक ही देवता के पृथक-पृथक नाम कहे गये हैं।

रुद्र को भयानक बताने के साथ-साथ उन्हें शिव भी बताया गया है। वह अपने भक्तगणों को विपत्तियों से बचाता है, उनका मंगल करता है। यहाँतक कि वह मोक्ष भी प्रदान करता है। रुद्र के रोगनिवारण की शक्ति का अनेक बार उल्लेख मिलता है। उनके पास हजारों औषधियाँ हैं जिनसे वे ज्वर, विष आदि का निवारण करते हैं। वैद्यों में उन्हें श्रेष्ठ वैद्य होने के कारण वैद्यनाथ भी कहते हैं। यही कारण है कि वैदिक परम्परा का अनुसरण करते हुए आज भी रोगादि कष्टों के निवारण हेतु शिव की उपासना, या शिवसंबंधी अनुष्ठान का उपयोग किया जाता है, जिसमें महामृत्युंजय तथा सोमवार व्रत आदि प्रसिद्ध हैं।

वस्तुत: अग्नि के दो रूप है-घोरातनु और अघोरातनु। अपने भयंकर घोररूप से वह संसार का संहार करने में समर्थ होता है। परन्तु अघोररूप में वही संसार के पालन में भी समर्थ है। यदि अग्नि का इस संसार से लोप हो जाय तो एक क्षण भी जीवन संभव नहीं है। अत: उग्ररूप के जो रुद्रदेव हैं वे ही मंगलसाधन के कारण शिव हैं जो रुद्र है, वही शिव है। इन दोनों की अभिन्नता परवर्ती वैदिक साहित्य में स्पष्टरूप से प्रतिपादित है। इस एकता का सूत्र हमें ऋ. वे.(2/33/7 तथा 10/92/9) में ही मिल जाता है।

अन्त में इतना कहा जा सकता है कि ऋ. वे. में रुद्र को परमशक्ति के रूप में देखा गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि रुद्र अग्नि में हैं, जल में हैं, औषधियों एवं वनस्पतियों में हैं तथा समस्त भूत उन्होंने ही रचे हैं(7/87/1)। यह मन्त्र श्वेताश्वतर(2/17) और अथर्वशिरस् उपनिषद् में भी मिलता है किन्तु श्वेताश्वतर में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया है। उन्हें अथर्ववेद में भूतपति एवं पशुपति(11/2/1) कहा गया है। इन श्लोकों से भी रुद्र जगत् के स्वामी सिद्ध होते हैं।

रुद्र को महादेव कहा गया है। महादेव उपाधि विष्णु को वैदिक संहिताओं में नहीं मिली है। विष्णु के महत्त्व में वृद्धि की शुरुआत ब्राह्मण ग्रन्थों से होती है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक ऋचाओं में रुद्र को ही सृष्टिकर्त्ता, संहारकर्त्ता, पालनकर्त्ता एवं परमशक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। उपनिषदों के आनेतक शिव को और ज्यादा स्पष्टरूप से जगत् का सृष्टि, पालन एवं संहारकर्त्ता स्वीकार किया जाने लगा और उसे ही ब्रह्म तथा जगत् का मूलकारण स्वीकारा जाने लगा।

(प्रस्तुत निबंध मुख्यरूप से नाग प्रकाशक, दिल्ली द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद संहिता(1990), अथर्ववेद संहिता(1994) तथा यजुर्वेद संहिता(1997) तथा भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली द्वारा 1982 में प्रकाशित तथा डॉ. गया चरण त्रिपाठी द्वारा लिखित 'वैदिक देवता' पर आधारित है।)

S S S S S S S S